PUNE RESEARCH WORLD ISSN 2455-359X
AN INTERNATIONAL JOURNAL OF INTERDISCIPLINARY STUDIES VOL 4, ISSUE 4

अम्बेडकर के बाद महाराष्ट्र में दलित आंदोलन की दशा और दिशा

अरुण एस. वाहूळ
सहाय्यक प्राध्यापक
इतिहास विभाग
विवेकानंद महाविद्यालय, औरंगाबाद
(महाराष्ट्र) भारत

बीसवीं सदी में भारत में जितने भी सामाजिक आंदोलन हुए उनमें जाति विरोध सबसे बडा और व्यापक आंदोलन था। यह आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के समांतर चला हुआ आंदोलन था। वैसे तो पूरे देश में जाति विरोध की लहर चल रही थी लेकिन उसका प्रभाव महाराष्ट्र में अधिक था। महाराष्ट्र में मा. फुलेने जाति विरोध आंदोलन की नींव रखी थी। उस परंपरा को शाहू महाराज ने आगे बढाया। शाहू महाराज के बाद इस परंपरा को डॉ. बाबासाहब अम्बेडकरने आगे ले जाकर एक शक्तिशाली जाति विरोध आंदोलन में परिवर्तित किया। यह आंदोलन दलित आंदोलन के नाम से जाना जाता है। अम्बेडकर दलित जाति में पैदा हुए थे। उन्होंने अत्यंत प्रतिकुल परिस्थिति में देश से बाहर जाकर शिक्षा ग्रहण की।

डॉ. अम्बेडकर १९२० ई. में अपने सामाजिक-राजनीतिक जीवन का शुभारंभ किया था। संपूर्ण महाराष्ट्र में सभी दलित जातियों को अपने प्रभाव में लाने में वे सफल हुए। डॉ. अम्बेडकर ने जाति विरोधी आंदोलन को राजनीतिक दिशा देने की कोशिश की। उन्होंने दलितों को संगठित करके उनके मन में राजकीय, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक समानता का बीज बोए। डॉ. अम्बेडकर ने सवर्णों से समानता की मांग की लेकिन सवर्णो ने उनका विरोध किया। इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने समानता हासिल करने के लिए सत्याग्रह का आश्रय लिया। इस संदर्भ में उनका पहला सत्याग्रह महाड में पाणी के अधिकार को हासिल करने के लिए था। उसी दौरान उन्होंने हिंदू कानुन की पुस्तक 'मनुस्मृति' का दहन किया। इसके बाद उन्होंने दलितों के मंदिर में प्रवेश की मांग उठायी। उसे पूरा करने के लिए नासिक के 'कालाराम मंदिर' में सत्याग्रह किया।

अम्बेडकर के नेतृत्व में जो आंदोलन उभरा उसकी एक विशेषता यह है कि, एक तरफ वह सवर्णों से लडते थे और दूसरी तरफ ब्रिटिश शासकों से, दलितों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र की मांग करते थे। डॉ. अम्बेडकर ने गोलमेज सम्मेलन में हिस्सा लेकर इस मांग को उठाया।ब्रिटिश सरकार ने उनकी मांग को स्वीकार कर लिया और दलितों को अलग निर्वाचन क्षेत्र दिए। जिसका गांधीजी ने पुरजोर विरोध किया। उन्होंने इसके लिए अनशन किया। इसलिए डॉ. अम्बेडकरने अलग निर्वाचन क्षेत्र की मांग छोड दी और दलितों को आरक्षित सीटें मिली। गांधी और अम्बेडकर के बीच में सितंबर १९३२ ई. में 'पुना करार' हुआ। इस समझौते का एक परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण देश में दलितों के एकमेव नेता के तौर पर अम्बेडकर उभरे और दलितों के प्रश्नों पर संपूर्ण देश में जागरुकता बढी। उसके बाद गांधीजी ने दलितों के लिए हरिजन यात्रा का आयोजन किया।

अम्बेडकर ने हिंदू धम्र में रहकर उसमें सुधार करने की बहुत कोशिश की लकिन जब उनको लगा कि जिस धर्म में मानवता की कोई कीमत नहीं है। तो उस धम्र में रहने का कोई मतलब नहीं है। इसलिए उन्होंने सन् १९३५ में येवला (नासिक) में घोषित किया कि मैं जिस धर्म में जन्म लिया है, उस धर्म में मैं मरुंगा नहीं। उसके बाद उन्होंने अनेक धर्मों का अध्ययन शुरु किया। सन् १९३५ के बाद अम्बेडकर को लगने लगा कि अकेले दलित जातियों को संगठित करके दलितों को उनका हक दिलाने के में रुकावटें आ सकती है। इसलिए अम्बेडकर ने देखा कि भारतीय युवकों का झुकाव समाजवादी कम्युनिस्ट विचारधारा की ओर है। इसलिए उन्होंने इन सब युवकों और सब पिछडे लोगों के लिए 'स्वतंत्र मजदूर पक्ष' की स्थापना १९३६ में की। अम्बेडकर ने अपना संपूर्ण आंदोलन सामाजिक समता और राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर केंद्रीत किया था। सन् १९३७ में आम चुनाव हुए तो मुंबई की १५ आरक्षित सीटों में से स्वतंत्र मजदूर पार्टी को १३ सीटों पर विजय हासिल हुई। अम्बेडकर भी चुनाव जीत गए थे। इस चुनाव के बाद कांग्रेस के प्रति अम्बेडकर का रुख बदल गया। पूना समझौते के बाद उनको लगा था कि कॉंग्रेस और गांधी दलितों के अधिकारों के प्रति इमानदार रहेंगे, लेकिन १९३७ के चुनाव में अम्बेडकर के विरोध में मुंबई के क्रिकेटर बाळू पलवणकर को खडा किया था कि अम्बेडकर चुनाव हार जाए। बाळू पलवणकर तब का सबसे लोकप्रिय क्रिकेटर था। अम्बेडकर उसके बाद भी चुनाव जीत गए। लेकिन कॉंग्रेस के ऊपर से उनका भरोसा उठ गया। सन् १९३७ के बाद अम्बेडकर ने खुद का रास्ता अलग कर लिया।

डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान निर्माण में बहुत अहम् भूमिका निभाई और एक आदर्श संविधान निर्माण किया। सन् १९४७ में भारत स्वतंत्र होने के बाद वे देश के पहले मंत्रीमंडल में कानून मंत्री बनें। इस दौरान उन्होंने हिंदू कोड बिल का प्रारुप तैयार किया। यह बिल पास हो जाता तो अम्बेडकर जो हिंदू धर्म में सुधार लाने का सपना देख रहे थे था वह काफी हद तक पूरा हो जाता। लेकिन जैसे ही बिल संसद में आया उसका विरोध होना शुरु हुआ। संसद और संसद के बाहर हंगामा शुरु हुआ। प्रधानमंत्री शुरु में बिल के प्रति अनुकूल थे लेकिन जैसे-जैसे विरोध शुरु हुआ नेहरु ने भी बिल के प्रति अनिच्छा जाहिर की। और यह बिल पास न हो सका। इसके चलते अम्बेडकर ने अपने मंत्रीपद से इस्तिफा दे दिया। इसके बाद अम्बेडकर ने सन् १९५२ में हुए पहले आम चुनाव में हिस्सा लिया। लेकिन कॉंग्रेस के

नीति के चलते वे संसद में जा न सकें। उनकी हार हो गयी। अपने जीवन के अंतिम दिनों में अम्बेडकर ने १४ अक्तूबर, १९५६ को नागपूर में बौद्ध धर्म का स्वीकार किया। उसके बाद अपने लाखों अनुयायियों को उन्होंने बौद्ध धर्म की दिक्षा दी।बौद्ध धर्म के सिद्धातों को स्वीकारने के बाद वे ज्यादा दिन जीवित न रह पाए और ६ दिसंबर, १९५६ को दिल्ली में उनका निधन हुआ।

अम्बेडकर ने अपने संपूर्ण जीवन में भारतीय समाज में अमुलाग्र परिवर्तन करने की कोशिश की। आजादी के बाद अंबेडकर ने काँग्रेस के विरुद्ध एक शक्तिशाली विपक्ष रखने की कोशिश की इसलिए उन्होंने शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन विसर्जित करके रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना करने की कोशिश शुरु की थी। लेकिन उनको उतना समय नहीं मिल पाया।

अम्बेडकर के निधन के बाद दलित समाज को सक्षम नेतृत्व नहीं मिल पाया। इसलिए उनके निधन के बाद दलित आंदोलन बिखरने लगा। जहाँ से इस आंदोलन की नींव रखी गयी थी उस महाराष्ट्र में भी यह आंदोलन अलग दिशा में जाने लगा। इस आलेख का यही उद्देश्य है कि अम्बेडकर के निधन के बाद महाराष्ट्र में दलित आंदोलन की प्रगति कैसी रही? अम्बेडकर ने जो सपने देखें थे उनको पूरा करने में यह आंदोलन किस हद तक कामयाब रहा? रिपब्लिकन पार्टी का क्या हस्र हुआ। यह सारे सवालों के जवाब ढूँढने के लिए इस विषय का चयन किया गया है।

६ दिसंबर, १९५६ में अम्बेडकर का निधन हुआ। उसके बाद दलित आंदोलन के सामने एक महत्वपूर्ण चुनौती यह थी कि उन दलित आंदोलन का नेतृत्व कौन संभालेगा। अम्बेडकर के निधानोपरान्त दलितों में शक का माहौल तैयार हुआ कि अम्बेडकर की हत्या की गयी है। और वह हत्या उनकी दूसरी पत्नी सविता अम्बेडकर ने की है। इसलिए दलितों का नेतृत्व करने में सविता अम्बेडकर असमर्थ सिद्ध हुई। दूसरी तरफ अम्बेडकर के बेटे यशवंतराव अम्बेडकर थे। लेकिन वह बौद्ध महासभा की कमान संभाल रहे थे। इसलिए उन्होंने शुरुआती दिनों में अपने आप को राजनीति से दूर रखा। ६ दिसम्बर के बाद महाराष्ट्र में दलित आंदोलन दो खेमों में बट गया। एक सविता अम्बेडकर को आगे कर रहा था तो दूसरी तरफ यशवंतराव अम्बेडकर को अपना नेता मान रहे थे। एक तिसरा वर्ग भी था जो सविता अम्बेडकर और यशवंतराव अम्बेडकर के पारिवारिक झगडों का फायदा लेने की कोशिश कर रहा था।

अध्यक्षीय मंडल :

८ दिसंबर, १९१५ में सविता अम्बेडकर और यशवंतराव अम्बेडकर को एक साथ लाने की कोशिश दादासाहेब गायकवाड ने की। लेकिन उस कोशिश में वे असफल रहे। (पवार, २००२ (१) : १८) ९ दिसंबर को शिवाजी पार्क में मुंबई की जनता की ओर से एक शोकसभा का आयोजन किया गया था। इस शोक सभा में यशवंतराव अम्बेडकर नहीं आए थे। और शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के नेता एन. शिवराज (जो बाद में आर.पी. आय. के पहले अध्यक्ष चुने गए।) भी इस शोकसभा में उपस्थित नहीं रह पाए। (उपरोक्त, २१) इस शोकसभा में दलित आंदोलन के नेतृत्व के संदर्भ में चर्चा हुई। लेकिन कोई नतीजा नहीं निकल पाया। उसके बाद उसी संदर्भ में चर्चा करने के लिए १५ दिसम्बर को नासिक में एक बैठक का

आयोजन किया गया। लेकिन इस बैठक में भी कोई निर्णय नहीं हो सका। क्योंकि हर कोई दलितों का नेता बनने की कोशिश कर रहा था। उसके बाद अहमदनगर में ३१ दिसंबर को धम्म दिक्षा का समारोह आयोजित किया गया। यह समारोह समाप्त होने के बाद नेतृत्व के विषय में चर्चा हुई लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। १ जनवरी, १९५७ में बैठक हुई। इस बैठक में चर्चा होने के बाद लोग इस नतीजें पर पहुँच की दलितों का नेतृत्व किसी एक व्यक्ति के हाथ में देने से अच्छा है सामुदायिक नेतृत्व किया जाए। क्योंकि अम्बेडकर के निधन के बाद कोई ऐसा सक्षम नेता नहीं था जो उनकी जगह ले पाता और दलित उस नेता को अपना नेता नहीं मानते। इसलिए सामुदायिक नेतृत्व स्वीकार किया गया। (उपरोक्त, २३)

सामुदायिक नेतृत्व के संदर्भ में एक अध्यक्षीय मंडल (प्रेसिडियम) बनाया गया जिसमें बॅ. राजाभाऊ खोब्रागडे, दादासाहेब गायकवाड, जी.टी. परमार, ए. राजम, आर. डी. भंडारे, के. बी. तळवटकर, बी. सी. कांबळे (उपरोक्त, २३) यह लोग थे। इस अध्यक्षीय मंडल को वो सब अधिकार दे दिए गये जो अधिकार डॉ. अम्बेडकर को थे। इस बैठक में अध्यक्षीय मंडल की सार्वभौमत्व पर मोहर लगायी गयी। इसमें एक प्रस्ताव पारित हुआ कि यह कार्यकारीणी, अध्यक्षीय मंडल के एकमेव नेतृत्व में विश्वास व्यक्त करती है। नूतन बौद्ध जन और अछूत समाज को ये आदेश देती है कि डॉ. अम्बेडकर के आदेशों का जिस निष्ठा से सब ने पालन किया था उसकी तरह अध्यक्षीय मंडल भी जो सूचना और आदेश देगा उसका पालन सब ने करना चाहिए। (मराठा, १७/४/१९५७) इस बैठक में शेड्यूल्ड कास्टस् फेडरेशन के अध्यक्षीय मंडल का विस्तार किया गया। इसमें चार लोगों को सम्मेलित किया गया। इसमें एन. शिवराज, एच.डी. आवळे, भगवती प्रसाद मौर्य और चनन राय का समावेश था।

अध्यक्षीय मंडल आगे के १० महिने तक अस्तित्व में था। इस १० महिने में उनके दो ही लक्ष्य थे। एक बौद्ध धम्म दिक्षा समारोह का आयोजन और दूसरा शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के नेतृत्व की दावेदारी। इसके बाहर अध्यक्षीय मंडल के लोग विचार न कर सके। १९५७ में देश में आम चुनाव हुए। अध्यक्षीय मंडल के सामने एक महत्वपूर्ण सवाल था कि आरक्षित सीटों का क्या करें। क्योंकि १४ अक्तूबर, १९५६ को धर्मांतरन के बाद इस संदर्भ में सवाल खडे हो रहे थे कि दलितों को जो आरक्षित सीटें मिली है वह धर्मांतरण की वजह से खत्म हुई। (पवार, २००२ (१), २४)

९ और ११ मार्च को चुनाव संपन्न हुए। शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन ने लोकसभा और राज्यों के चुनाव में हिस्सा लिया। उन्होंने आरक्षित सीटों पर भी अपने उम्मीदवार खडे किये थे। इस चुनाव में शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन को काफी अच्छी सीटें मिली। लोकसभा में आठ[१] और महाराष्ट्र में १७ विधायक चुनकर आए[२]। इसके अलावा पंजाब से ५, मैसूर से २ आंध्रा से १, गुजरात से २ और मद्रास से ३ विधायक चुनकर आए थे। (पवार, २००२ (१), २६-२७)

रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना :

डॉ. अम्बेडकर ने अपने राजनीतिक जीवन में भारतीय राजनीति में अनेक बदलाव करने की कोशिश की। उन्होंने कॉंग्रेस पार्टी के खिलाफ एक शक्तिशाली विपक्ष की संरचना स्पष्ट कर दी थी।

इसलिए उन्होंने अमरिका के धर्ती पर रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना करने की दृष्टि से प्रयत्न किए थे। लेकिन उनको अपने अंतिम दिनों में उतना समय नहीं मिल पाया। डॉ. अम्बेडकर ने एक पॉलिटिकल ट्रेनिंग स्कूल की नींव भी रखी थी। उनका मानना था कि, जैसे हर क्षेत्र में काम करने के लिए प्रशिक्षण की जरुरत होती है, वैसे ही राजनीति में भी राजनेताओं को प्रशिक्षित होना जरुरी है। सन् १९५७ के आम चुनाव में कामयाबी के बाद रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना की मांग जोर पकडने लगी थी। इसलिए ३ अक्तूबर, १९५७ में दशहरे के दिन पार्टी की स्थापना करने का ऐलान किया गया। सितंबर १९५७ के पहले सप्ताह में दादासाहब गायकवाड के १५ जनपथ नई दिल्ली के घर पर शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के विधायकों की बैठक हुई। इसमें शेड्यूलड कास्ट फेडरेशन की जगह रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया स्थापन करने का प्रस्ताव पारित हुआ। इस पार्टी का संविधान बनाने की जिम्मेवारी बी. सी. कांबले को दी गयी।

एक तरफ रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना करने की कवायत चल रही थी तो दूसरी तरफ जिन अछूतों ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था, उनको मिलने वाला आरक्षण कायम रहें इसलिए अक्तूबर १९५७ के पहल प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरु से शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के सांसदों ने भेंट की। नेहरु दलितों को मिलने वाले आरक्षण देने के लिए अनुकूल थे, लेकिन नेहरु ने एक सवाल पूछा कि, और कितने लोग बौद्ध धर्म का स्वीकार करने वाले है? क्योंकि हिंदू धर्म के लोगों का दबाव बढता जा रहा था कि दलितों के ऐसे धर्मांतरण से हिंदू धर्मिय कम हो रहे हैं। नेहरु के सवाल का जवाब शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के नेताओं ने उल्टे तरीके से दिया। उन्होंने कहा, पंडित जी आकाश में बादल छाए हुए है कितनी बारिश होगी यह कैसे कहा जा सकता है। यह जवाब सुनकर नेहरु को गुस्सा आया और नेहरु ने कहाँ कि कितनी बारिश होगी इसका जवाब बारिश होने के बाद देखेंगे। यह कहकर उन्होंने जो कुछ अछूतों के अधिकारों के वापसी के संदर्भ में नोट्स बनाए थे वह शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के नेताओं के सामने फाड डाले। (धम्मलिपि, १४/१० / १९८९, ११)

नेहरु के चेंबर से बाहर आते ही शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के नेताओं में आपसी तू-तू, मैं-मैं शुरु हुई। इसी माहौल में १ अक्तूबर, १९५७ को नागपूर में अध्यक्षीय मंडल की बैठक हुई। इसमें रिपब्लिकन पार्टी के संदर्भ में विस्तृत चर्चा हुई। २ अक्तूबर १९५७ को शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन की बैठक दोलारा, नागपूर में आयोजित की गयी। इसमें रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना करने से पहले शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के बरखास्त करने का प्रस्ताव पारित हुआ। (पवार, २००१ (१), ४१-४२) ३ अक्तूबर, १९५७ को नागपूर में जहाँ अम्बेडकर ने अपने लाखों दलित अनुयायियों को धम्म दिक्षा दी थी उसी जगह सात लाख लोगों के समक्ष रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना की गयी। नवनिर्मित रिपब्लिकन पार्टी का प्रथम अध्यक्ष पद एन. शिवराज को दिया गया। पार्टी के स्थापना से ही पार्टी में अंतर्गत कलह शुरु हो गया था। सन् १९५७ से ही पार्टी ने सिर्फ धर्मांतरण संबंधी मुद्दों को उठाना शुरु किया। इसलिए बाकि के लोगों ने इसको सिर्फ दलितों के प्रश्नों की पार्टी और हिंदू विरोधी पार्टी कहना शुरु किया। ९ दिसंबर, १९५७ को बी. सी. कांबले ने लोकसभा में मांग रखी की डॉ. अम्बेडकर के मृत्यु की जांच होनी चाहिए। इस मुद्दे को लेकर

३५ सांसदों ने सभा त्याग किया। लेकिन सरकार पर इसका कोई असर नहीं हुआ। (उपरोक्त, ४८) इस मुद्दों को लेकर बी. सी. कांबले रिपब्लिकन पार्टी में अकेले नजर आने लगे। इस मुद्दे को लेकर उनके ही साथी उनका मजाक उडाने लगे।

३ अक्तूबर, १९५८ में नागपूर में रिपब्लिकन पार्टी का वाषिक अधिवेशन हुआ। उसमें पार्टी का अध्यक्ष पद खुद को मिलने के लिए आवळे बाबू ने अपनी भूमिका स्पष्ट की। इसलिए इस सम्मेलन में गुटबाजी साफ नजर आने लगी। इस सम्मेलन में पार्टी के नए संविधान को मान्यता देनी थी। लेकिन गुटबाजी के चलते वह काम न हो सका। हंगामी कार्यकारिणी की अवधि बढाई गयी। लेकिन इस मुद्दे को लेकर पार्टी दो भागों में बंट गयी। एक गुट के नेता आवळे-कांबले थे तो दूसरे गुट में गायकवाड-खोब्रागडे थे। पार्टी के अध्यक्ष महाराष्ट्र के बाहर से थे। इसलिए वह ज्यादा हस्तक्षेप न कर सकें। रिपब्लिकन पार्टी महाराष्ट्र के नेताओं के हाथ में पूरी तरह से आ गयी। इसलिए उसकी आत्मा और अम्बेडकर का सपना दोनों खो गए।

इसके बाद इन गुटों ने अपने-अपने अलग सम्मेलन आयोजित करना शुरु किए। गुटबाजी को देखकर यशवंतराव अम्बेडकर बहुत दुखी हुए। उन्होंने दोनों गुटों के नेताओं को एक करने की कोशिश शुरु की। उन्होंने ३० नवंबर, १९५८ को मुंबई के पंचायत समिति के सभागार में एक बैठक आयोजित की। इस बैठक में ६ सदस्यों वाली समिति का गठन किया गया। इस समिति को एक महिने के अंदर दोनों गुटों की भूमिका सुनेंगी। इस समिति के निमंत्रक खुद यशवंतराव अम्बेडकर थे। इस समिति में अन्य सदस्य एन. शिवराज, दादासाहब गायकवाड, बी. सी. कांबले, हरिदास आवले और आर. डी. भंडारे थे। ३० दिसंबर, १९५८ में दोनों गुटों की एकता की घोषणा की गयी। (उपरोक्त, ६०)

यशवंतराव अम्बेडकर के प्रयत्नों से एकता प्रस्थापित हुई पर वह अधिक दिनों तक न टीक सकी। फिर से वही सवाल उभरे की पार्टी के लिए नए संविधान को मंजूरी कब मिलेगी। बी. सी. कांबले ने यह मांग उठायी। एक सप्ताह के अंदर नये संविधान को मंजूरी मिले ऐसा उन्होंने कहा। उसके बाद दोनों गुटों ने अपने अलग सम्मेलन आयोजित करने शुरु किये। १२ और १३ में १९५९ में नागपूर में सम्मेलन हुआ और दूसरा औरंगाबाद में। दोनों ने रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया इसी नाम से सम्मेलन आयोजित किए।

१३ मई, १९५९ में नागपूर में आवले को अध्यक्ष चुना गया। एन. एम. कांबले ने एक प्रस्ताव रखा कि, जब पदाधिकारियों की ओर से पार्टी के घटनात्मक परिस्थिति के संदर्भ में भूल हो जाती है तब भूल को सुधारने के लिए जनता की सम्मती की जरुरत होती है। यही रास्ता भूल सुधारने का असली रास्ता होता है। रिपब्लिकन अनुयायियों को इस संकट की स्थिति से बाहर लाने के लिए और भूल सुधारने के लिए हमने आपके पैरों पर यह प्रस्ताव रखा है। आप इसे स्वीकृत करें। (प्रबुद्ध भारत, १९/१०/१९५९) लोगों ने तालिया बजाकर इस प्रस्ताव को स्वीकृत किया। नादुरुस्त रिपब्लिकन पार्टी को दुरुस्त करने का ठेका आवले-कांबले ने लिया था। आवले-कांबले अपना गुट रिपब्लिकन पार्टी (दुरुस्त) इस नाम से शुरु किया। तो दूसरी ओर दादासाहब गायकवाड के गुट को नादुरुस्त घोषित किया।

औरंगाबाद में दादासाहब गायकवाड के गुट का सम्मेलन हुआ। उसमें आवले-कांबले को पार्टी से निकाल दिया गया और अपनी पाटी सही अर्थों में ही रिपब्लिकन पार्टी है, यह घोषित किया गया। गुटबाजी के चलते उत्तर भारत के अनेक दलित नेता कॉंग्रेस में जाने का विचार करने लगे। जिस उद्देश्य से डॉ. अम्बेडकर ने रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना करना चाहते थे उनके विचार को भूलकर उनके अनुयायी आपस में लडकर खुद की शक्ति टटोलने लगे थे। डॉ. अम्बेडकर के दलित आंदोलन के जो लक्ष्य थे उसके बारे में भूलने लगे। डॉ. अम्बेडकर के समय जो दलित समाज था उसमें बहुत बडी खाई दुरुस्त[३] और नादुरुस्त[४] गुट तैयार होने के बाद बन गई।

भूमिहिनों का संघर्ष :

सन् १९५९ में नादुरुस्त गुट ने वाद-विवादों से परे होकर अपने आपको भूमिहिनों के सवाल पर अपना लक्ष्य केंद्रित किया। १४ और १५ में १९५९ में हुए सम्मेलन में प्रस्ताव पारित किया गया कि, सब भूमि सरकार ने अपने कब्जे में ले लेनी चाहिए और जो उस जमीन पर काम करना चाहता है उसे वो जमीन दे देनी चाहिए। जो भी उत्पाद होगा उसके एक समान हिस्से करके बाँट लेने चाहिए। (पवार, २००२ (१), ७७) इस भूमिहिनों का सवाल का निराकरण करने के लिए इस प्रश्न को लेकर लोगों में जागृति आनी चाहिए। इसलिए २७ जून १९५९ के दिन मुंबई के शिवाजी पार्क में सभा का आयोजन किया गया। इसमें यह कहा गया कि भूमिहीनों की संख्या ज्यादातर खान्देश में है इसलिए वहाँ से आंदोलन की शुरुआत की जानी चाहिए। तब खान्देश की जनसंख्या ११,४६०२४ थी। इसमें ५ लाख भूमिहीन लोग थे। आंदोलन शुरु करने से पहले मुंबई राज्य के मुख्यमंत्री यशवंतराव चव्हाण के पास एक शिष्ट मंडल भेजा गया और सरकार के समक्ष सब तथ्य रखे गए। इस शिष्ट मंडल का नेतृत्व दादासाहब गायकवाड ने किया।

सरकार के समक्ष भूमिहिनों का प्रश्न रखने के बाद सरकार की ओर से कोई कदम नहीं उठाए जाने के कारण २६ जूलाई, १९५९ में पश्चिमी खान्देश में रिपब्लिकन पार्टी के पी. एल. ललिंजकर की अध्यक्षता में भूमिहिनों का आंदोलन छेडा गया। रिपब्लिकन पार्टी के इस आंदोलन में कम्युनिस्टों ने भी हिस्सा लिया। वास्तविक परिस्थिति यह थी कि कम्युनिस्टों का महाराष्ट्र के गाँवों में कोई प्रभाव नहीं था। इस आंदोलन के माध्यम से वह गाँवों में अपना प्रभाव स्थापित करना चाहते थे। रिपब्लिकन पार्टी की वजह से वह काफी हद तक कामयाब रहे। दादासाहब गायकवाड के साथ नाना पाटील भी गाँव-गाँव में घूम रहे थे। अगस्त १९५९ तक संपूर्ण खान्देश में भूमिहिनों के आंदोलन की ज्वाला धधक उठी।

२५ अगस्त, १९५९ में मुंबई राज्य के महसूल मंत्री रसिक लाल पारेख ने मुंबई विधान परिषद और विधान सभा में यह आश्वासन दिया कि सरकार ने भूमिहिनों को भूमि देना स्वीकार कर लिया है। (उपरोक्त, ८०) सरकारने आश्वासन देने के बाद आंदोलन कुछ दिनों तक स्थगित किया गया। लेकिन जब लोगों को लगने लगा कि सरकार ने सिर्फ आश्वासन दिया है, उसकी पूर्ति करने के लिए जो कदम उठाने चाहिए थे उस संदर्भ में सरकार ने कुछ नहीं किया। इसलिए ५ सितंबर, १९५९ में अहमदनगर जिले में

भंडारे, खोब्रागडे, माने, यशवंतराव अम्बेडकर ने फिर से आंदोलन शुरु किया। ११ सितंबर को दादासाहब गायकवाड ने घोषित किया कि अब पीछे नहीं हटना है। (उपरोक्त, ८१)

खान्देश अहमदनगर के अलावा कोल्हापूर, सोलापूर, नागपूर तक यह आंदोलन पहुँच चुका था। सरकार ने आंदोलन की तीव्रता कम करने के लिए आंदोलनकर्ताओं को हिरासत में लेना शुरु किया। सरकार के सामने यह सवाल खडा हो गया कि इतने लोगों को कहाँ रखा जाए? क्योंकि लोगों को कैद में रखने की जगह नहीं बची थी। इस लिए सरकारने सिनेमा घरों में लोगों को रखना शुरु किया। (उपरोक्त, ८१) सरकार की तरफ से कैद में लेने का काम जैसे शुरु हुआ वैसे आंदोलन में लोगों की भागीदारी बढी। इस आंदोलन में महिलाओं ने भी हिस्सा लिया। ७ अक्तूबर को मुंबई राज्य के मुख्यमंत्री ने चर्चा के लिए आमंत्रित किया और वह दिल्ली चले गए। इसका लोगों को बहुत गुस्सा आया। १० अक्तूबर को बाळा चोखा गायकवाड की आंदोलन में मृत्यु हो गयी। उसका शव पुलिसने तीन दिन बाद दिया। उसकी बहुत बडी शवयात्रा निकाली गयी। लोगों में सरकार के प्रति गुस्सा बढता जा रहा था। सरकारने इस आंदोलन को दबाने के लिए एडी-चोटी का जोर लगाया पर कुछ हासिल न हो सका। सरकार को अपनी गलती समझ में आने लगी और उन्होंने १७ अक्तूबर को आंदोलनकर्ताओं की माँगे मान ली। यह अम्बेडकर के अनुयायियों की बहुत बडी जीत थी।

राजनीतिक आरक्षण को नकारना :

महाराष्ट्र में दलितों को मिलने वाले आरक्षण के संदर्भ में लोगों की अपने-अपने विचार थे। अम्बेडकर के बाद महाराष्ट्र के दलित आंदोलन ने राजनीतिक आरक्षण छोडने की बात सामने रखी। भारत सरकार हर दस सालों में शेड्यूल कास्ट और शेड्यूल्ड ट्राइब्स (एस.सी. और एस.टी.) की प्रगति का जायजा लेती थी। घटनात्मक आरिक्षत जगह पर विचार मंथन चलता था। सन् १९५० से हर दस साल में आरक्षित जगह बढाने और घटाने के अधिकार भारतीय संसद को दिया गया था। चुनाव में आरक्षित सीटों का फायदा अनुसूचित जाति और जनजाति को होता था या नहीं इस संदर्भ में देखा जाए तो आरक्षित सीटों में असली प्रतिनिधि नहीं जाते थे। जब डॉ. अम्बेडकर जीवित थे तब २१ अक्तूबर १९५५ में तत्कालीन शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के एक बैठक में आरक्षित सीटें छोडने का निर्णय लिया गया था। (पवार, २००२, ९३) लेकिन उसके बाद रिपब्लिकन पार्टी ने इस निर्णय को दरकिनार कर दिया था। १९५९ में रिपब्लिकन पार्टी के नादुरुस्त गुट ने यह मांग फिर से दोहराई की दलितों का राजनीतिक आरक्षण खत्म होना चाहिए। क्योंकि इस आरक्षण के माध्यम से दलितों के असली प्रतिनिधि संसद में नहीं जाते। जिस दलित समाज के प्रति उन्हें इमानदार रहना चाहिए वह उसे ईमानदारी नहीं दिखाते। वह तो जिस पार्टी से चुनाव जितते है, उसके प्रति अपनी ईमानदारी दिखाते है। इसलिए राजनीतिक आरक्षण खत्म होना चाहिए। लेकिन सरकार ने इस माँग के प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई। यह सवाल सिर्फ महाराष्ट्र में उठा था। बाकि के राज्यों में इसके बारे में कोई चर्चा नहीं हुई।

बौद्धों को सामाजिक आरक्षण :

१९५६ से ही एक महत्वपर्ण प्रश्न सामने आया था कि बौद्धों को दलितों जेसे अधिकार और फायदे मिलने चाहिए या नहीं? अम्बेडकर धर्मांतरण के बाद घोषणा की थी कि मुझे संपूर्ण भारत को बौद्धमय करना है। इसका विपरित परिणाम सरकार पर हुआ। सरकार ने २९ अक्तूबर, १९५६ में ६३वाँ संविधान संशोधन किया गया जिसके अनुसार संविधान के ३४१ कलम में संशेधन करके कहा गया कि शेड्यूल्ड कास्ट तय करने के लिए हिंदू या शीख होना जरुरी है। बौद्ध होने के बाद शेड्यूल्ड कास्ट नामक सूची में उसका अंतर्भाव नहीं किया जाएगा। इसलिए उसे शेड्यूल्ड कास्ट के फायदे नहीं मिलेंगे। नव बौद्धों को मिलने वाले फायदे सरकारने खत्म किए। बौद्धों को इसकी जरुरत थी क्योंकि भारत में जो बौद्ध थे वे १९५६ के पहले दलित थे। लेकिन सरकार कि तरफ से यह कदम इसलिए उठाया जा रहा था क्योंकि १४ अक्तूबर के बाद संपूर्ण भारत में धर्म बदलने के समारोह हो रहे थे। हिंदू धर्म का धिक्कार हो रहा था।

महाराष्ट्र के दलित आंदोलन का १९५६ से ही सरकार पर दबाव बनाने की कोशिश हो रही थी। बौद्ध को शेड्यूल्ड कास्ट के फायदे मिले। रिपब्लिकन पार्टी ने प्रधानमंत्री, गव्हर्नर, मुख्यमंत्री,जिलाधिकारी, तहसीलदार इनको निवेदन देने की मोहिम गतिमान की थी। ३१ दिसंबर, १९५९ में दिल्ली में यशवंतराव चव्हाण इनकी उपस्थिति में यह सवाल रखा गया। इस बैठक में एस. एम. जोशी, दत्ता देशमुख, उद्धवराव पाटील, स. का. पाटील, मामा देवगिरीकर, आचार्य अत्रे और बी. सी. कांबले शामिल हुए थे। इस बैठक में महत्वपूर्ण निर्णय हुआ और बौद्धों को शेड्यूल्ड कास्ट के फायदे देना सरकार ने स्वीकार किया। (पवार, २००२ (१), ९६)

१९५९ के बाद रिपब्लिकन पार्टी में दरारे और ज्यादा बढने लगी। इसका खामीयाजा दलित आंदोलन को भुगतना पडा। १९५९ के बाद रिपब्लिकन पार्टी ने धर्मांतरण, डॉ. अम्बेडकर के पुतले और चुनाव इससे अपने आपको बांध लिया।

भूमिहिनों का संघर्ष :

सन् १९५९ में पहली बार रिपब्लिकन पार्टी ने महाराष्ट्र में यह आंदोलन चलाया था। इस आंदोलन को बहुत प्रसिद्ध मिली थी। इसके चलते सरकार को आंदोलनकर्ताओं की माँगों को स्वीकार करना पडा था। १७ अक्तूबर, १९५९ को सरकार ने भूमिहिनों की माँगों को स्वीकार कर लिया था। इस निर्णय को लागु करने के लिए ३ सचिवों की एक समिति गठित की गयी थी। इस समिति के बनाए अहवाल के अनुसार १ मई, १९६१ में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री यशवंतराव चव्हाण ने चार लाख एकड भूमि भूमिहिनों को दी गयी, ऐसी घोषणा आकाशवाणी पर की थी। (पवार, २००६ (२), ८९) पर सरकार ने फिर से भूमिहिनों से जमीनें वापस ले ली। ११ और १२ जून १९६० में चालीसगाव में रिपब्लिकन पार्टी का सम्मेलन हुआ, इसमें फिर से सरकार के विरुद्ध आंदोलन चलाने का प्रस्ताव सामने रखा गया। नंदुरबार, धुलिया आदि जगहों पर आंदोलन की शुरुआत हुई। १६ जनवरी, १९६१ में धुलिया के कलेक्टर के कचेरी पर मोर्चा निकाले गए। आंदोलन की तीव्रता बढ रही थी। इससे ५० हजार लोगों ने हिस्सा लिया। महाराष्ट्र के हर जिले में मोर्चे निकाले गए। आंदोलन की तीव्रता बढ रही थी।

१ अक्तूबर, १९६४ के सबेरे ८:३० मिनिट पर दिल्ली के लाल किले से मार्च निकाला गया। वह दोपहर १२ बजे लोकसभा के पूर्व हिस्से के मैदान में पहुँचा। इस मार्च में पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, मध्यप्रदेश, सौराष्ट्र, गुजरात, मैसूर, आंध्र प्रदेश, मद्रास आदि जगहों से कार्यकर्ता भी शामिल हुए थे। दादासाहब गायकवाड, राजाभाऊ खोब्रागडे, बी.पी. मौर्य का शिष्ट मंडल निवेदन लेकर सभापती हुकुमसिंह से मिलकर प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री और गृहमंत्री गुलजारीलाल नंदा से मिले। उसके बाद सभा हुई। उस सभा के अध्यक्ष दादासाहब गायकवाड थे। (प्रबुद्ध भारत, ३/१०/१९६४)

प्रधानमंत्री को दिए हुए निवेदन के अनुसार भूमिहिनों की माँगे पूरी न होने पर ६ दिसंबर, १९६४ के बाद आंदोलन की गतिशिलता बढाने के चलते प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने दादासाहब गायकवाड को फोन करके मुंबई में चर्चा करने के लिए बुलाया। यह बैठक २ नवंबर १९६४ में हुई थी। इस बैठक में दादासाहब गायकवाड, यशवंतराव अम्बेडकर थे। लालबहादुर शास्त्री ने दादासाहब के शिष्ट मंडल को बताया कि आप लोग जरा धीरज से काम ले। पर शिष्ट मंडल ने कहा कि हमने बहुत दिनों तक इंतजार किया है। हम सिर्फ ६ दिसंबर तक इंतजार करेंगे। उसके बाद पूरे देश में आंदोलन शुरु किया जाएगा। (प्र.भा., १४/११/१९६४) लालबहादुर शास्त्री से बात करने के बाद दलित शिष्टमंडल को लगा कि सरकार कुद करने वाली नहीं है। इसलिए आंदोलन शुरु करने की दिशा में जरुरी कदम उठाने शुरु किए। १५ नवंबर को ॲक्शन कमिटी की दिल्ली में बैठक हुई। इसके अध्यक्ष दादासाहब गायकवाड थे। इधर आंदोलन की तैयारी चल रही थी और दूसरी तरफ बी.सी. कांबले और उनका गुट इसका विरोध कर रहा था। इसी दौरान बी. सी. कांबले के गुट के नेता एन. एम. कांबले दादासाहब गायकवाड के गुट में शामिल हुए। (पवार, २००६ (२), ९५-९६)

६ दिसंबर, १९६४ को भूमिहिनों का आंदोलन फिर से शुरु हुआ। इस आंदोलन को देशव्यापी सत्याग्रह का स्वरुप आया। एक ही दिन पंजाब, मद्रास, मैसूर, दिल्ली, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश से हजारों कार्यकर्ताओं को हिरासत में लिया गया। सरकार के ओर से भी प्रतिक्रिया तेज थी। सत्याग्रहियों पर खुब अत्याचार किए गए। सत्याग्रहियों ने अत्यंत संयम से इस अत्याचार को सहन किया। काँग्रेस की तरफ से यह प्रचार अभियान चलाया गया कि सत्याग्रह खत्म हुआ है। ६ दिसंबर से ३१ दिसंबर इस दौरान १४,४७०० सत्याग्रहियों को हिरासत में लिया गया। इसमें महाराष्ट्र के १ लाख ३ हजार सत्याग्री थे। इसमें महिला, वृद्ध, छोटे-छोटे बच्चे सब शामिल थे। रिपब्लिकन पार्टी की तरफ से जो माँगे उठायी गयी थी उस पर यह आरोप लग रहा था कि, यह आंदोलन बौद्धों का है। यह माँगे देखे तो नजर आता है कि यह आंदोलन बौद्धों का था या सब लोगों का? १) डॉ. अम्बेडकर का तैलचित्र संसद के सेंट्रल हॉल में लगाना। २) जो खेती करेगा उसकी जमीन। ३) जीवनावश्यक वस्तु पर सरकार ने अंकुश रखना चाहिए। ४) बडे शहरों में जितनी झोपडपट्टियाँ है उसमें रहने वाले हर जाति धर्म के लोगों को पर्यायी घर देने से पहले बेघर नहीं करना चाहिए। ५) सबको किमान वेतन मिलना चाहिए। ६) जो लोग धर्मांतरीत अनुसूचित जाति एवं जनजाति के है उन्होंने बौद्ध धम्र स्वीकार किया है तो भी उनको सभी फायदे मिलने चाहिए। बाकि की माँगे संविधान संबंधी अधिकारों के संदर्भ में थी। उसमें छुआछूत बंद होनी चाहिए, बॅकलॉग भरना

चाहिए, छुआछूत निवारन कानून की सक्ती से कार्यवाही योग्य पद्धति से होनी चाहिए। (पवार, २००६, ९८-९९)

इन माँगों पर एक नजर डाले तो हमें स्पष्ट हो जाता है कि इसमें जो माँगे थी वह सिर्फ बौद्धों के संबंध में नहीं थी। फिर भी उन पर बौद्ध का आंदोलन का आरोप लग रहा था।

दलितों पर जातिगत अत्याचार :

भारत स्वतंत्र होने के बाद नए संविधान के अनुसार देश में कानून का राज्य प्रस्थापित हुआ। लेकिन जो सामाजिक बुराईयाँ थी वह कानून लागु होने पर भी खत्म नहीं हुई। संविधान में छुआछूत पालना गैर कानूनी घोषित किया था। लेकिन फिर भी पूरे देश में दलितों को उसी हिसाब से देखा जाता था। जैसे संविधान लागु होने के पहले देखा जाता था। बाकि के राज्यों की बात छोड भी दे तो महाराष्ट्र में दलित आंदोलन अत्यंत प्रभावी था। वहाँ पर भी दलितों को अत्यंत बूरी तरह से देखा जाता था और देखा जाता है। दलित हमारे गुलाम है और वह हमेशा हमारे गुलाम रहेगे। इस भूमिका में विचार करने वालों की संख्या महाराष्ट्र में भी बहुत ज्यादा थी। सन् १९५६ के बाद जब महाराष्ट्र के दलितों ने हिंदू धर्म को छोडकर बौद्ध धर्म का स्वीकार किया तो उनके प्रति सवर्णों का नफरत की दिशा में मुडा।

सन् १९५६ के बाद महाराष्ट्र में दलित और सवर्णों में सांस्कृतिक संघर्ष शुरु हुआ। हिंदू की जो भी प्रथा और परंपरा थी उसको नकारने का अभियान दलित समुदाय की ओर से चलाया गया। १४ अक्तूबर १९५६ के बाद संपूर्ण भारत में और विशेषतः महाराष्ट्र में धर्मांतरण की लहर पैदा हुई थी। अम्बेडकर के निधन के बाद अब यह सिलसिला थमा नहीं। हर बार लाखों की संख्या में महाराष्ट्र के दलित हिंदू धर्म का त्याग करके बौद्ध धर्म का स्वीकार करने लगे। सवर्णों को यह बात हजम नहीं हो रही थी। इसलिए वह दलितों को संदेह की दृष्टि से देख रहे थे। सरकार भी इसी दृष्टि से उनके तरफ देख रही थी। १७ जून, १९५६ को तत्कालीन मुंबई राज्य के मुख्यमंत्री यशवंतराव चव्हाण विधान सभा में कह रहे थे कि, 'मैं विपक्ष पार्टियों को सावधान रहने के लिए एक बात उनके नजरों के सामने रखना चाहता हूँ कि इस धर्म परिवर्तन करने के पीछे केवल धार्मिक भावना है ऐसा नहीं है। मेरे पास नेताओं के भाषणों के रिपोर्ट है, उससे यह जाहीर होता है कि उनको एक नया राष्ट्र चाहिए। इसलिए मैं विपक्ष को सावधान रहने के लिए कह रहा हूँ। (महाराष्ट्र टाईम्स, १८/६/१९५६) इस बात में कोई सच्चाई नहीं थी। क्योंकि धर्मांतरण करने के पीछे डॉ. अम्बेडकर का मुख्य उद्देश्य समता प्रस्थापित करना था। उन्होंने कभी अलग राष्ट्र की मांग नहीं रखी थी। तो उनके अनुयायी इसे कैसे रख सकते थे। यह वक्तव्य यह सिद्ध करता है कि सरकार और बाकि के लोगों के दलितों के धर्मांतरण के संदर्भ में कुछ संदेह था। सवर्णों के हाथ से उनका परंपरा उनके लिए काम करने वाला दूर हुआ था। और वह बराबरी का हक मांग रहा था। यह बात सवर्णों को पचाने में बहुत साल लगे। दलित धर्मांतरण के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर के विचार को आगे ले जाने का काम कर रहे थे।

PUNE RESEARCH WORLD ISSN 2455-359X
AN INTERNATIONAL JOURNAL OF INTERDISCIPLINARY STUDIES VOL 4, ISSUE 4

दलितों के प्रति सवर्णों का गुस्सा उनको मिलने वाले आरक्षण के संदर्भ में भी था। हजारों सालों से गुलामगिरी में रह रहे लोगों को अब सवर्णों के बराबरी का दर्जा देने मे हिचक महसूस कर रहे थे। धर्मांतरण और आरक्षण के विषय के चलते दलितों के प्रति सवर्णों का गुस्सा कम होने के बजाय बढ रहा था। इसके चलते महाराष्ट्र में अनेक क्षेत्रों में दलितों पर अत्याचारों का सिलसिला बढता गया। रिपब्लिकन पार्टी भी इसे रोकने में नाकामयाब सिद्ध हुई।

सन् १९६३ में मराठवाडा क्षेत्र में औरंगाबाद जिले के शिरसगाव में दलितों की बस्ती पर (जिसे अब बौद्ध बस्ती कहा जाता है) हमला कर दिया और दलित स्त्रियों को नग्न कर के उनको पूरे गाँव में घुमाया गया। स्त्रियों पर जबरन बलात्कार किया गया। ३२ घंटे बाद उनका मेडिकल किया गया। पुलिस तो यह मानने को तेयार नहीं थी कि ऐसा कुछ हुआ। (खैरमोडे, १९८५ (६), १४) नांदेड जिले के एकलारा गाँव में मातंग और बौद्धों ने गाँव के काम करने बंद कर दिया। उस गाँव के बोळबाई देवी की यात्रा में परंपरा के अनुसार रेडे को काँटने का काम उनको करना था। लेकिन जब उन लोगों ने उसे नकारा तो समस्त गाँव के लोगों ने उनका बहिष्कार कर दिया। (नवशक्ती, १७/११/६९, ०३) कानोसा ता. वसमतनगर जिला परभणी में सुदामा नाम के एक १७ वर्षिय बौद्ध छात्र को एक सवर्ण के खेत में ले जाया गया। उस खेत में इंजिन था वो चल नहीं रहा था। इसलिए गाँव के पुरोहित ने उनको कहा था कि अगर दलित युवक की बलि दी जाए तो इंजिन शुरु हो सकता है। इसलिए खेत में उस युवक को जिंदा जलाया गया। कुछ लोगों ने यह देखा तो सवर्ण वहाँ से भाग गए। बुरी हालत में युवक को अस्पताल में ले जाया गया। लेकिन वहाँ पर उसे मृत घोषित किया गया। (नवशक्ती, २६/११/६९, ६)

नासिक शहर से दूर खेलस गाँव में बौद्धों एवं अछूत इनका एक पक्ष और हिंदू का एक पक्ष ऐसा भेद हो गया था। बौद्ध और अछूतों ने हिंदू के विरोध की परवा किए बगेर गाँव में अपने घर बाँधे थे। इसलिए गाँव में तणाव निर्माण हुआ था। (क्योंकि महाराष्ट्र में दलितों को गाँव में रहने की अनुमति नहीं थी। उनके घर गाँव से बाहर होते थे।) हरि शिवराय गवली और उसका भाई काशीनाथ यह बौद्ध थे और रिपब्लिकन पार्टी के कार्यकर्ता थे। इन दोनों ने गाँव में घर बाँधने का नेतृत्व किया था। इसलिए सवर्णो को इसके प्रति गुस्से की भावना थी। एक दिन इन बौद्धों का घोडा शिंदे नाम के एक सवर्ण हिंदू के खेत में घुसा इसलिए उस घोडे को घर लाने के लिए हरी शिंदे के खेत में गया तब शिंदे परिवार के लोगों ने हरि पर कुलाडी से वार किया। हरि की मदद के लिए उसका भाई काशीनाथ आया लेकिन उस पर भी कुलाडी से वार किया गया। दोनों भाई खेत में ही मर गए। (नवशक्ती, ५/१०/६९, ६)

अहमदनगर जिले में संगमनेर गाँव के बालमुकुंद इस सवर्ण ने यादव पवार, यशवंत पवार, बंडू आगरे इस तीन छात्रों को अपने घर में किरायदार रख लिया। कुछ दिनों बाद यह बात सामने आइ की यह छात्र सवर्ण नहीं अछूत है। तब इन छात्रों को गाली गलोच करके उनका सामान घर से बाहर फेंक दिया। (खैरमोडे, १९८५ (६), १८) ठाणे जिले के कलणे की सर्वे नं. २९७ यह जगह बौद्ध स्मशानभूमि थी। वहाँ की ग्राम पंचायत ने खेमचंद राजकुमार कंपनी को कारखाना निकालने के लिए जिलाधिकारी की अनुमति लिए बिना यह जमीन दे दी। उस जगह पर १४४ धारा के तहत बौद्धों को वहाँ जाना प्रतिबंधित किया

PUNE RESEARCH WORLD ISSN 2455-359X
AN INTERNATIONAL JOURNAL OF INTERDISCIPLINARY STUDIES VOL 4, ISSUE 4

गया। (नवशक्ती, ५/१२/१९७०, ५) शांताबाई म्हस्के ने अपनी जमीन का विवाद सरकारी अफसर के पास ले गयी तब उसे पता चला कि उसकी जमीन दूसरे आदमी के नाम पर कर दी गयी है। इस महिलाने इस अन्याय के प्रति विरोध करके सरकार को चेतवनी दी की मेरी जमीन मेरे नाम पर नहीं की गई तो मैं आत्मदाह कर लुंगी। (उपरोक्त, ७/३/१९७०, ५) पर उस पर सरकार ने कोई कारवाई नहीं की।

इसके अलावा हर गाँव में दलितों को पाणी भरने का अधिकार नहीं मिला था। उस प्रश्न को लेकर महाराष्ट्र के अनेक गाँवों में दलितों का सवर्णों से संघर्ष बहुत गंभीर होता चला गया।

महाराष्ट्र में दलितों पर जो अन्याय अत्याचार हुए उसके कुछ उदाहरण मैंने उपर दिए है। लेकिन ऐसी बहुत सारी घटनाएँ है, जब यह सारी घटनाएँ घट रही थी तो रिपब्लिकन पार्टी की तरफ से ज्यादा कुछ नहीं हो सका। वह अपने राजनीतिक काम में व्यस्त थी। सही मायनों में डॉ. अम्बेडकर की सामाजिक परिवर्तन की परंपरा को भुल गए थे।

दलितों पर जो अन्याय-अत्याचार हो रहे थे लकिन दलितों की भूमिका व्यक्त करने के लिए दलितों संगठन इतना मजबूत नहीं था। दलितों में युवक इस बात का गुस्सा निर्माण हुआ की सवर्ण हमारे उपर जो जति के नाम से जो शोषण कर रहे थे इसका जवाब देने के लिए उनके पास कोई विकल्प नहीं था। इस लिए रिपब्लिकन पार्टी पर से भी दलित लोगों का भ्रम टूटता गया। और दलित युवक नए विकल्पों के बारें में विचार-विमर्श करने लगें।

१९५६ के बाद महाराष्ट्र में दलित आंदोलन अलग दिशा में जाता नजर आता है। एक तरफ दलित राजनीति आपसी झगडे में व्यस्त थी और दूसरी दलितों में शिक्षित युवक अलग पर्यायों का विचार करने लगे थे। क्योंकि रिपब्लिकन पार्टी सत्ता स्वार्थ गुटबाजी में व्यस्त थी। अस्पृश्यता पर स्वतंत्र संगठन, जाति निर्मुलन के प्रश्न पर काम करने वाली संस्था की जरुरत थी।

सन् १९५६ के बाद प्रस्थापित साहित्य के विरुद्ध लिटल मॅगेझिन आंदोलन जोर पकडा था। सन् १९५६ के बाद दलित साहित्य उभर कर सामने आया। सन् १९५६ में महाड में प्रथम बौद्ध साहित्य सम्मेलन हुआ। महाविद्यालय में शिक्षा लेने वाले छात्रों में संघटन शुरु हुआ था। हर महाविद्यालय में रिपब्लिकन छात्र संगठन स्थापन हो चुका था। इस संगठन में बहुत सारे छोटी तुकडियाँ थी। उनकी शक्ति महाविद्यालय तक ही सीमित थी। इस दौरान डॉ. म. ना. वानखेडे अमरिका का दौरा कर के आए थे। उन्होंने वहाँ के काले लोगों के आंदोलन की चर्चा अपने यहाँ के लोगों से की ब्लैक लिटरेचर की धर्ती पर विद्रोही साहित्य निर्माणक रने की कवायत शुरु हुई।

यह सभी विषय महाविद्यायलयों के हॉस्टेल में जो दलित रहते थे उनकी चर्चा में शामिल थे। अमरिका मे निग्रो आंदोलन का एक संगठन था वह ब्लैक पँथर के नाम से जाना जाता था। इस ब्लैक पैंथर की भी चर्चा दलित छात्रों में होने लगी थी।

दलित युवक निग्रो आंदोलन की धर्ती पर दलित पँथर की नींव रखना चाहते थे। लेकिन दलित छात्र अनेक तुकडियों में बटें थे। नामदेव ढसाळ (प्रजा समाजवादी), राजा ढाले (दलित युवक आघाडी), भाई संगारे (काँग्रेस), गंगाधार गाडे, टी. एम. कांबले (रिपब्लिकन छात्र संगठना) (लिंबाळे, २०१४, ७)

दलित पैंथर का उदय :

रिपब्लिकन पार्टी की गुटबाजी, जाति विरोध के संघर्ष को फिर से शुरु करने की आशा और दलित युवकों में सामाजिक प्रश्नों के खिलाफ बढता गुस्सा इसकी वजह से एक क्रांतिकारी जहाल संगठन की जरुरत महसूस हो रही थी। इसलिए दलित युवकों ने निग्रो आंदोलन की धर्ती पर दलित पैंथर की शुरुआत करने की ठानी।

९ जुलाई, १९७२ में दलित पैंथर की स्थापना हुई। नामदेव ढसाळ, ज. वि. पवार, राजा ढाले, रामदास सोरटे, लतीफ खाटिक, अविनाश महालेकर, प्रल्हाद चेंदवलकर, अर्जुन डांगळे, भाई संगारे, अनकिल कांबले, अरुण कांबले, रामदास आठवले, गंगाधर गाडे, प्रीतिम कुमार शेगावकर, टी. एम. कांबले आदि कार्यकर्ताओं ने पैंथर के आंदोलन को आगे बढाया। दलित पैंथर खूब कम समय में लोकप्रियता हासिल करने वाला संगठन बना। इसकी मुख्य वजह यह थी कि दलित पैंथर के नेताओं के बेबाक भाषण बडी-बडी जनसभाएँ, मार्च, पुलिस केसेस, जो जिस भाषा में बोलता है उसी भाषा में जवाब देने की आदत, हिंदू देवी-देवताओं पर जनसभाओं में टीका टिप्पणियाँ। (उपरोक्ता, ७)

दलित पैंथर की लोकप्रियता का और मुख्य कारण यह था कि उन्होंने रिपब्लिकन पाटी के नाकारापण पर जोरदार हमला किया। पैंथर का 'विद्रोह' यह मुखपत्र ढसाल और ज. वि. पवार चलाते थे। इसमें नामदेव ढसाल, ज. वि. पवार, प्रल्हाद चेदवणकर आदि कार्यकर्ता की मराठी साहित्य चर्चा का विषय हुआ। स्वातंत्र्य कुठल्या गाढवीचे नाव? (स्वतंत्रा किस गधी का नाम?), आमी रामराज्याच्या कुठल्या घरात राहतोय? (हम रामराज्य के कौनसे घर में रहते है?) ऐसे सवाल अपनी कविता के माध्यम से नामदेव ढसाल ने पुछे। (उपरोक्त, ८)

दलित पैंथर का संगठन महार और बौद्ध युवकों का संगठन था। पैंथर की स्थापना से ही संगठन व्यापकता बढाने की बात हो रही थी। बाकि के बहिष्कृत जाति-जनजाति के लोगों को पैंथर में शामिल करना जरुरी है। क्योंकि संगठन में लोगों की भागीदारी बढानेपर ही संसदीय राजनीति में कुछ महत्व प्राप्त हो सकता हे। केवल नवबौद्धों के भरोसे आंदोलन आगे नहीं बढाया जा सकता। हम दलितों का प्रतिनिधित्व करने वाले है। पर आर्थिक दृष्टि से दुर्बल दलितों के मुक्ति संदर्भ में हमारी भूमिका क्या है? इसका विचार विमर्श शुरु हुआ। इसलिए दलित पैंथर में मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद यह दो विचार प्रवाह निर्माण हुए। (गायकवाड, १९८०, ४०) दलित पैंथर मे मार्क्सवादी प्रवाह को कम्युनिस्ट उत्तेजन दे रहे थे। पैंथर की बढती शक्ति का अपने राजकीय स्वार्थ के लिए फायदा उठाने की कोशिश कम्युनिस्ट कर रहे थे। (उपरोक्त, ४०) नामदेव ढसाल मार्क्सवाद की भूमिका को अपनी भूमिका स्वीकार कर चुके थे। लेकिन उनके सहयोगी राजा ढाले ने शुद्ध अम्बेडकरवाद की भूमिका रखी। अम्बेडकरवाद को किसी अन्य विचार

की जरुरत नहीं इसलिए राजा ढाले ने मार्क्सवाद को नकारा। और स्पष्ट किया कि दलित पैंथर बौद्ध तत्वप्रणाली के तहत चलनी चाहिए।

इस वैचारिक संघर्ष न सन् १९७४ में दलित पैंथर में अलग रूप ले किया और पैंथर दो विचारों में बट गयी। नागपूर में आयोजित पैंथर के सम्मेलन में वैचारिक संघर्ष के चलते राजा ढाले ने नामदेव ढसाल को पैंथर से निकाल दिया और पैंथर में दरार पड गयी। (उपरोक्त, ४०) पैंथर में गुटबाजी निर्माण होने के बाद भी पैंथर के नाम का इस्तमाल कुछ लोग सौदेबाजी के लिए कर रहे थे। इसलिए राजा ढाले ने यह घोषित किया कि हमारा स्वतंत्र अस्तित्व है। और यह सिद्ध करने के लिए हम दलित पैंथर का संगठन बरखास्त करते है। और नए मास मुव्हमेंट की घोषणा करते है। दलित पैंथर के नाम से जो लोग घूम रहे है वह लोग प्रतिगामी लोगों के साथी है और अम्बेडकर वाद के शत्रू है। उनके साथ कोई भी अम्बेडकरवादी नहीं है। फिर भी दलित पैंथर के नाम का दुरुपयोग यही लोग कर रहे हैं। (ढाले, पॉम्पलेट)

दलित पैंथर बरखास्त होने के बाद दिलत समाज में फिर से निराशा का महौल तैयार हुआ। दलित पैंथर बरखास्त करने के बाद फिर से उसे संगठित करने के लिए करुण कांबले, रामदास आठवले, दयानंद म्हसके, बापू साहब पखिड्डे, रमेशचंद्र परमार, गंगाधर गाडे, प्रीतमकुमार शेगावकर, भाई संगारे आदि पैंथर नेताओं ने किया। अब इसे भारतीय दलित पैंथर नाम दे दिया गया। इसके पहले अध्यक्ष अरुण कांबले थे। फिर से पैंथर वही काम शुरु किया जो पहले वह करते आ रहे थे।

नामांतर संघर्ष :

मराठवाडा क्षेत्र में डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर ने शिक्षा की दृष्टि से बहुत अच्छा काम किया था। खासकर औरंगाबाद में उन्होंने मिलिंग कॉलेज, लॉ कॉलेज, कॉमर्स कॉलेज के माध्यम से शिक्षा की नींव रखी थी। इसलिए पैंथर के उदय के बाद दलित समाज में यह माँग उठी की औरंगाबाद में जो विश्वविद्यालय है उसे डॉ. अम्बेडकर का नाम देना चाहिए। इसलिए पैंथर की तरफ से इसके लिए आंदोलन चलाया गया।

सन् १९७७ में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री वसंतदादा पाटील ने दलित आंदोलन आश्वासन दिया कि जुलाई १९७८ में औरंगाबाद विश्वविद्यालय को डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर का नाम दिया जाएगा। दलित आंदोलन इसका इंतजार करता रहा पर सरकार की ओर से कुछ खास नहीं किया गया।

लॉंग मार्च १९७८ :

महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री द्वारा दिया गया आश्वासन को महिना बीत गया था। फिर भी सरकार की तरफ से कुछ नहीं किया गया। इसलिए पैंथर ने एक नेता जोगेंद्र कवाडे ने नागपूर में नामांतर संघर्ष शुरु करने के लिए लॉंग मार्च का आयोजन किया। ४ अगस्त, १९७८ को आंदोलन का आगाज हुआ। कवाडे के नेतृत्व में नागपूर की दीक्षाभूमि से जिलाधिकारी कार्यालय तक मोर्चा निकाला गया। आकाशवाणी चौक में बडी सभा हुई। उसमें बडी संख्या में छात्र शामिल हुए।सभा के बाद लोग उत्साहपूर्ण अपने घरों कि और लौट रहे थे। तभी उत्तर नागपूर के १० नंबर पुलिया चौक पर अचानक हिंसा भडक उठी। कुछ

असामाजिक तत्वों ने सरकारी बसों पर पत्थर फेंके।हिंसा पर काबू पाने के लिए पुलिस ने फायरिंग शुरु कर दी। इसमें अविनाश डोंगरे को गोली लगी। इससे लोगों का गुस्सा बढा। भव्य लाँग मार्च का आयोजन नागपूर से औरंगाबाद तक करने का तय किया गया। उसी वर्ष दीक्षाभूमि पर धम्मचक्र प्रवर्तन दिन समारोह से लाँग मार्च की शुरुआत हुई। बौद्ध पंडित भदंत आनंद कौशल्यायन ने आर्शीवाद दिया। ३० कि.मी. प्रतिदिन पैदल चलते हुए इस मार्च ने १८ दिनों में ४७० कि.मी. सफर तय किया। कडाके की ठंड पड रही थी। मराठवाडा विश्वविद्यालय के नामांतर के लिए किया गया लाँग मार्च दुनिया का तीसरा सबसे बडा मार्च था। लाँग मार्च में गाँव के गाँव शामिल होने से संख्या काफी बढ रही थी। २७ नवंबर को आंदोलनकारी खडकपूर्णा नदी तक पहुंच गए। दोपहर में ही आंदोलनकारियों को रोक लिया गया। उन्हें वापस जाने के लिए कहा जा रहा था। लेकिन वे अपनी माँग पर अडे थे। संयोग से उसी दिन बारिश भी हो रही थी। हजारों कि संख्या में लोग जमा हुए थे। लोग पुल पर ही धरना देने बैठ गए। रात १२ बजे के बाद लाठीचार्ज शुरु हुआ। पुल के खाई नुमा छोरों को लाँघकर आंदोलनकारी झुडपी क्षेत्र में भागे। कवाडे समेत सैंकडों आंदोलनकारियों को कैद कर लिया गया। (दैनिक भास्कर, १४/१०/२०११)

नवंबर, १९७८ के बाद नामातंर आंदोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया था। दलित अपनी माँगों पर अडे थे तो दूसरी तरफ गाँव-गाँव में दंगे शुरु हो गए थे। दलितों की बस्ती पर रात को हमले हो रहे थे। उनके घर जलाए जा रहे थे। इन दंगों में १२०० गाँव प्रभावित हुए। २५,००० लोग अपने घर छोडकर जंगल में रहने लगे। सवर्णों को लग रहा था कि डॉ. अम्बेडकर का नाम विश्वविद्यालय को देने के बाद इस विश्वविद्यालय पर अछूतों का कब्जा हो जाएगा। इस नामांतर के संघर्ष के विरोध में शिवसेना पार्टी ने विरोधी भूमिका निभाई। इस पार्टी में गाँव मे ंऔर शहरों में संगठन था। इसलिए उन्होंने इसका फायदा उठाकर नामांतर आंदोलन का विरोध करना शुरु किया। यह संघर्ष यही थमा नहीं। इस संघर्ष में अनेक दलित युवकों ने अपनी जान कुर्बान की। इसमें नांदेड जिले में टेंभुर्णी नाम के गाँव के पोचिराम कांबले ने ४ अगस्त, १९७८ को जयभीम बोलते खुद को आत्मदाह किया। (एकमत, ३० जुलाई २०१३) उसके बाद २५ नवंबर, १९९३ में गौतम वाघमारे इस युवक ने नामांतर के लिए खुद को जिंदा जलाया। महाराष्ट्र में आत्मदाह करने की एक लहर सी आ गयी। इसलिए सरकार ने १४ जनवरी, १९९४ में मराठवाडा विश्वविद्यालय का नामविस्तार किया। (लिंबाले, २०१४, १५)

सन् १९७८ के बाद दलित पैंथर में गुटबाजी फिर से बढने लगी। दलित पैंथर के अनेक गुट स्थापित हो गए। ढसाल गुट, ढाले गुट, आठवले गुट, गाडे गुट, सांगारे गुट, कांबले गुट आदि। (लिंबाले, २०१४, ४५)

सन् १९७८ के बाद दलित पैंथर का भी रिपब्लिकन पार्टी जैसा ही हस्र हुआ। इसके बाद दलित आंदोलन बिखर गया। महाराष्ट्र दलित आंदोलन राजनीतिक चक्रव्यूह में उलझ गया। सत्ता की लालसा से दलित नेता कभी काँग्रेस कभी बी.जे.पी. के साथ नजर आने लगे। इससे अम्बेडकर का सपना सपना रह गगया। जो उन्होंने आधुनिक भारत के संदर्भ में देखा था।

निष्कर्ष :

डॉ. अम्बेडकर के निधन के बाद दलित आंदोलन की दिशा अम्बेडकर के विचारों की दिशा में मार्गक्रमण करते हुए आगे बढी पर डॉ. अम्बेडकर के दलित आंदोलन के संदर्भ में जो सपने देखे थे। वह पूरे नहीं हो सके। सन् १९५६के बाद जब रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना हुई तो ऐसा लगने लगा था कि दलित आंदोलन सही मायनों में संपूर्ण भारत के दलितों को अपने में समेटने की ताकद रखता है। रिपब्लिकन पार्टी सभी प्रांतों में अपना प्रभाव सिद्ध करेगी। शुरु में तो पार्टी ने संपूर्ण भारत में अपना प्रभाव निर्माण करने में कायाबत रही। लेकिन जैसे-जैसे समय गुजरता गया रिपब्लिकन पार्टी महाराष्ट्र के अंदर सिकुडने लगी। रिपब्लिकन पार्टी में ज्यादातर नेता महाराष्ट्र से थे और उनका प्रभाव पार्टी में ज्यादा था। इसलिए रिपब्लिकन पार्टी में महाराष्ट्र के बाहर के नेताओं का ज्यादा प्रभाव निर्माण न हो सका। इसलिए रिपब्लिकन पार्टी महाराष्ट्र में ही मर्यादित हो गयी। महाराष्ट्र के बाहर रिपब्लिकन पार्टी अपना प्रभाव निर्माण करने मे ेइसलिए नामामयाब रही क्योंकि रिपब्लिकन पार्टी में महाराष्ट्र के बाहर के नेताओं का प्रभाव नहीं था। इसलिए रिपब्लिकन पार्टी अखिल भारतीय पार्टी नहीं बन पायी।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने संपूर्ण आंदोलन में सामाजिक प्रश्नों को ज्यादा महत्व दिया था। सामाजिक सुधार के लिए उन्होंने राजनीति का सहारा लेनी की कोशिश की थी। लेकिन उनके निधन के बाद संपूर्ण दलित आंदोलन सामाजिक प्रश्नों पर से परे होकर राजनीतिक गतिविधियों में उलझकर रह गया और सामाजिक प्रश्नों पर से दलित आंदोलन ध्यान बट गया। अम्बेडकर का जाति विरोध आंदोलन पूरी तरह दरकिनार हुआ। सन् १९९६ के बाद दलितों पर होने वाले अत्याचार कम नही हुए थे। लेकिन रिपब्लिकन पार्टी सामाजिक प्रश्नों के तरफ देखना बंद कर दिया था। रिपब्लिकन पार्टी ने जो एक मुद्दे पर ज्यादा जोर दिया था वह मुद्दा था धर्मांतरण का। संपूर्ण महाराष्ट्र और महाराष्ट्र के बाहर बौद्ध धर्म स्वीकार करने की एक लहर सी पैदा हो गई थी। लेकिन एक अरसे बाद उन्होंने उस पर भी अपना ध्यान कम किया।

रिपब्लिकन पार्टी और दलित आंदोलन की एक महत्वपूर्ण मर्यादा यह रही थी कि इनके नेतृत्व में राजनीतिक महत्वाकांक्षा जोर से उभरने लगी थी। हर कोई खुद को संपूर्ण दलित समुदाय का नेता होने की कोशिश कर रहा था। इसकी वजह से दलित आंदोलन में गुटबाजी की लहर आयी। उससे दलित आंदोलन बिखर गया। महाराष्ट्र में दलित अत्याचार की लहर आयी। उससे महाराष्ट्र के दलित युवकों में आक्रोश बढा इसके नतीजा यह हुआ कि दलित युवकों ने महाराष्ट्र में दलित पैंथर की स्थापना की। यह जहाल विचारधारा वाला संगठन था। सवर्णों को उनकी ही भाषा में उत्तर देने की मुहिम शुरु कि, दलित अत्याचारों के खिलाफ इन्होंने आवाज बुलंद की। अपने साहित्य के माध्यम से दलित भावानाओं को उजागर करने की एक मुहिम शुरु की। दलित पैंथर ने महाराष्ट्र में जहाल आंदोलन की नींव रखी थी लेकिन यह आंदोलन भी ज्यादा दिनों तक एक न रह सका। दलित पैंथर में वैचारिक मतभेदों की वजह से मतभेद तैयार हुए और दलित पैंथर में गुट तैयार हुए। अम्बेडकरवाद विरुद्ध मार्क्सवाद का यह संघर्ष था।

२०वीं सदी में दलित आंदोलन एक शक्तिशाली आंदोलन के रूप में उभरा लेकिन राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के चलते जल्द ही इस आंदोलन की दशा और दिशा बदल गई।

टिप्पणियाँ :

१. लोकसभा चुनाव में शेड्यूल्ड कास्ट फेउरेशन सन् १९५७ में जी. के. माने (मध्य मुंबई), बी. सी. कोबले (नगर कोपरगाव), भाऊराव गायकवाड (नासिक), बी. जी. सांळूखे (पुणे), हरिहरराव सोनूले, एफ के. दिघे (कोल्हापुर), दत्ता ए. कट्टी (चिकाडी), कसनदास परमार (अहमदाबाद), बाद में एन. शिवराज भी इनमें शामिल हुए जो स्वतंत्र उमेदवा के रूप में चुनकर आए थे। यह चिंगलपूर मद्रास से चुनाव विजयी हुए थे। (पवार, २००२, २६-२७)

२. महाराष्ट्र विधान सभा में १७ विधायक विजयी हुए थे। इसमें प्रा. आर. डी. भंडारे, मुंबई, डॉ. एस. एम. बंदिसोडी, सातारा, पी. टी. मधाळे, द. सातारा, जगन्नाथराव भतणकर, मुंबई, एम. टी. गायकवाड, माणगाव, ए. जी. लोढें बारामती, पंजाबराव शंभरकर नागपूर, एस. एल. कांबले, नासिक, पीए. एम. चौरे, खडकी, डी. एस. शिर्के हातकंणगले, ए. जी. पवार (शिर्डी), टी. आर. खंकाळ (मेहकर), ए. एस. पटणे, (खेड), तानाजी गायकवाड (कुलाबा), जी. बी. कांबले (चिपलूण), पी. एस. बारीचा (मुंबई), आर. डी. पवार (श्रीगोंदा) (पवार, २००२ (१) २६-२७)

३. दुरुस्त गुट : एच. डी. आवले (अध्यक्ष), ए. जी. पवार (ज. सेक्रेटरी), बी.सी. कांबले, जी.टी. रुपवते, एन. एम. कांबले, डॉ. सु. भि. मानकीकर, बाय. बी. खंदारे, सखुबाई मोहिते, एस. डी. चिपलूणकर, एम. एस. सलोळकर, बी.बी. जाधव. व्हीटी. मेहता (पवार, २००२ (१))

४. नादुरुस्त गुट : एन. शिवराज (अध्यक्ष), दादासाहब गायकवाड, राजाभाऊ खोब्रागडे, आर. डी. भंडारे, जी. के. माने, एस. के. दिघे, क. यू. परमार, पी. टी. बोराले, यशवंतराव अम्बेडकर, पी.टी. मधाले, पावती भाई घोरीचा, पी. एस. चौरे, लोढें, एन. एम. कांबले, आर. एस. रणशृंगारे, आर. जी. खंडाले, जगन्नाथ भातनकर, वामनराव पगारे, के. एल. कांबले, पी. जे. रोहम, शांताबाई दानी, पी. एल. ललिंजकर, अशोक निले, बी.एस. मोरे, शंकरराव खरात, आर. जी. खरात, बी.बी. आशय्या, जी.टी. परमार, घनश्याम तलवलकर (पवार, २००२ (१))

संदर्भ सूची:-

१. पवार, ज. वि. २००२ (१), आंबेडकरोत्तर आंबेडकरी चळवळ, औरंगाबाद, कौशल्य प्रकाशन

२. मराठा, १७/४/१९५७, मुंबई

३. धम्मलिपी, १४/१०/१९८६ मुंबई

४. प्रबुद्ध भारत, १९/१०/१९५९ मुंबई

५. प्रबुद्ध भारत, ३/१०/१९६४ मुंबई

६. पवार, ज. वि. (२) आंबेडकरोत्तर आंबेडकरी चळवळ, औरंगाबाद, कौशल्य प्रकाशन

७. खैरमोडे चांगदेव, १९८५ (६), डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर, पुणे, सुगावा प्रकाशन

८. नवशक्ती, २६/११/१९८६

९. लिंबाळे शरणकुमार, २०१४ दलित पँथर, पुणे, दिलीपराज प्रकाशन

१०. गायकवाड सुधाकर, १९८०, अस्मिता दर्शक, औरंगाबाद

११. ढाले राजा, १९७४, दलित पँथर बरखास्त, पॉम्पलेट, मुंबई

१२. दैनिक भास्कर, १४/१०/२०११, मुंबई

१३. एकमत, ३०/०७/२०१३